International Journal of Applied Research 2021; 7(6): 421-424

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(6): 421-424
www.allresearchjournal.com
Received: 29-03-2021
Accepted: 21-05-2021

अर्चना राय
छात्रा, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अर्चना राय
छात्रा, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरीय क्षेत्रों के सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक परिवर्त्तन का तुलनात्मक अध्ययन

अर्चना राय

सारांश
'सामाजिक परिवर्तन' एक सामान्य अवधारणा है जिसका प्रयोग किसी भी परिवर्तन के लिए किया जा सकता है, जो अन्य अवधारणा द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता है, जैसे आर्थिक अथवा राजनैतिक परिवर्तन। समाजशास्त्रियों को इसके व्यापक अर्थ को विशिष्ट बनाने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा। ताकि यह सामाजिक सिद्धांत के लिए महत्त्वपूर्ण हो सके। अपने बुनियादी स्तर पर, सामाजिक परिवर्तन इंगित करता है, उन परिवर्तनों को जो महत्त्वपूर्ण हैं– अर्थात, परिवर्तन जो किसी वस्तु अथवा परिस्थिति की मूलाधार संरचना को समयावधि में बदल दें। अतः सामाजिक परिवर्तन कुछ अथवा सभी परिवर्तनों को सम्मिलित नहीं करते, मात्रा बड़े परिवर्तन जो, वस्तुओं को बुनियादी तौर पर बदल देते हैं। परिवर्तन का 'बड़ा' होना मात्र इस बात से नहीं मापा जाता कि वह कितना परिवर्तन लाता है, बल्कि परिवर्तन के पैमाने से, अर्थात समाज के कितने बड़े भाग को उसने प्रभावित किया है। दूसरे शब्दों में, परिवर्तन दोनों, सीमित तथा विस्तृत तथा समाज वह एक बड़े हिस्से को प्रभावित करने वाला होना चाहिए ताकि वह सामाजिक परिवर्तन वह योग्य हो सके।

कूटशब्द : ग्रामीण क्षेत्र, नगरीय क्षेत्र, सामाजिक व्यवस्था

प्रस्तावना
गाँवों की स्थिति भिन्न होती है। अतः यह अपेक्षा की जाती है कि सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति में भी भिन्नता होगी। गाँवों का आकार छोटा होताहै। अतः ये अधिकांशतः व्यक्तिगत संबंधों का अनुमोदन करते हैं। गाँव के लोगों द्वारा तकरीबन गाँव के ही दूसरे लोगों को देखकर पहचान लेना असामान्य नहीं है। अधिकांशतः गाँव की सामाजिक संरचना परंपरागत तरीकों से चालित होती हैः इसलिए संस्थाएँ जैसे जाति, धर्म तथा सांस्कृतिक एवं परंपरागत सामाजिक प्रथाओं के दूसरे स्वरूप यहाँ अधिक प्रभावशाली हैं। इन कारणों से, जब तक कोई विशिष्ट परिस्थितियाँ न हों, गाँवों में परिवर्तन नगरों की अपेक्षा धीमी गति से होता है। इसके लिए अलग से भी कई कारण जिम्मेदार हैं। विभिन्न परिस्थितियाँ यह सुनिश्चित करती हैं कि समाज के अधीनस्थ समूहों के पास ग्रामीण इलाके में अपने नगरीय भाइयों की तुलना में अभिव्यक्ति के दायरे बहुत कम होते हैं। गाँव में व्यक्ति एक दूसरे से सीधा संबंद्ध होता है। इसलिए व्यक्ति विशेष का समुदाय के साथ असहमत होना कठिन होता है और इसका उल्लंघन करने वालों को सबक सिखाया जा सकता है।

इसके साथ ही, प्रभावशाली वर्गों की शक्ति सापेक्षिक रूप से कहीं श्यादा होती है क्योंकि वे रोजगार के साधनों तथा अधिकांशतः अन्य संसाधनों को नियंत्रित करते हैं। अतः गरीबों को प्रभावशाली वर्गों पर निर्भर होना पड़ता है क्योंकि उनके पास रोजगार के अन्य साधन अथवा सहारा नहीं होता।

कम जनसंख्या के कारण, अधिक व्यक्तियों को संगठित करना कठिन कार्य होता है, विशेषकर इस प्रकार की कोशिशों को बलशाली वर्ग से छिपाया नहीं जा सकता तथा जल्दी ही उसे दबा दिया जाता है। अतः संक्षेप में, यदि गाँव में पहले से ही मजबूत शक्ति संरचना होती तो उसे उखाड़ फेकना बहुत कठिन होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में शक्ति संरचना के संदर्भ में होने वाला परिवर्तन और भी धीमा होता है क्योंकि वहाँ की सामाजिक व्यवस्था अधिक मशबूत और स्थिर होती है। किसी क्षेत्र में परिवर्तन आने में भी समय लगता है क्योंकि गाँव बिखरे होते हैं तथा पूरी दुनिया से एकीकृत नहीं होते जैसे नगर तथा कस्बे होते हैं। यह सही है, संचार के नए साधन, विशेषकर टेलीफोन तथा टेलीविजन से काफी परिवर्तन आया है। अतः अब सांकृतिक 'पिछड़ापन' गाँवों तथा नगरों के बीच काफी कम या न के बराबर हो गया है। अन्य संचार के साधनों (सड़के, रेल) में भी समय के साथ सुधार आया है इसके कारण मात्र कुछ एक गाँव 'एकांत' तथा 'पिछड़ा' होने का दावा कर सकते हैं। ऐसे शब्द जो बिना सोचे-समझे भूतकाल में गाँवों के साथ जुड़े थे। इसने समाज को और भी गतिशील किया है।

निःसंदेह कृषि से संबंधित परिवर्तन अथवा कृषकों के सामाजिक संबंधों का ग्रामीण समाजों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अतः भू-स्वामित्व की संरचना में आए परिवर्तनों पर भूमि सुधर जैसे कदमों का सीध प्रभाव पड़ा। भारत में स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार के पहले चरण में, दूरवासी जमीदारों से स्वामित्व के हक लेकर उन समूहों को दे दिए गए जो वास्तव में भूमि की देख-भाल तथा खेती कर रहे थे। इनमें से अधिकांश समूह मध्यवर्ती जातियों से संबंधित थे और यद्यपि वे स्वयं ज्यादातर कृषक नहीं थे, पर उन्होंने भूमि पर आधिपत्य जमा लिया। उनकी संख्या के अनुरूप, इस तथ्य ने उनके सामाजिक स्तर तथा राजनैतिक शक्ति को बढ़ाया क्योंकि चुनाव जीतने के लिए उनके वोट आवश्यक थे। एम.एन. श्रीनिवास ने इन वर्गों को 'प्रभावी जातियों' के नाम से पुकारा है। कई क्षेत्रीय संदर्भों में, प्रभावी जातियाँ आर्थिक दृष्टि से बेहद शक्तिशाली हो गई थीं तथा गाँवों में उनका वर्चस्व होने के कारण उन्होंने चुनावी राजनीति को प्रभावित किया। आज के संदर्भ में ये प्रभावी जातियाँ स्वयं अपने से निम्न जातियों-निम्नतर तथा अत्यधिक पिछड़ी जातियों द्वारा दृढ़तापूर्वक किए गए विद्रोहों से स्वयं भी जूझ रही हैं। इस कारण, कई राज्यों जैसे– आंध्रप्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा तमिलनाडु में प्रमुख सामाजिक आंदोलनों की प्रवृत्ति देखी जा रही है।

इसी प्रकार, कृषि की तकनीकी प्रणाली में परिवर्तन ने भी ग्रामीण समाज पर व्यापक तथा तात्कालिक प्रभाव डाला है। नयी मशीनरी के प्रयोग से श्रम में बचत होती है तथा फसलों की नवीन पद्धति इत्यादि के कारण मजदूर की माँग में परिवर्तन अपेक्षित होगा तथा इसके कारण विभिन्न सामाजिक समूहों जैसे–जमींदार तथा मजदूरों के बीच मोलभाव की सापेक्षिक ताकतों में परिवर्तन आएगा। यदि वे प्रत्यक्ष रूप से मजदूरों की माँग को प्रभावित न भी करते हों, तकनीकी तथा आर्थिक परिवर्तन विभिन्न समूहों की आर्थिक शक्ति को परिवर्तित कर सकते हैं और इस प्रकार परिवर्तनों की श्रृंखला को प्रारंभ करते हैं। कृषि की कीमतों में आकस्मिक उतार-चढ़ाव, सूखा अथवा बाढ़ ग्रामीण समाज में विप्लव मचा देते हैं। भारत में किसानों द्वारा हाल ही में की गई आत्महत्या की संख्या में वृद्धि इसके उदाहरण हैं। वहीं दूसरी तरफ, बड़े स्तर पर विकास कार्यक्रम जो निर्धन ग्रामीणों को ध्यान में रखकर चलाए जाते हैं, उनका भी कापफी असर पड़ता है। इसका एक बढ़िया उदाहरण 2005 का राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम है।

नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक परिवर्तन

यह सर्वविदित है कि नगर अपने आप में बेहद प्राचीन हैं– ये प्राचीन समाज में भी थे। नगरवाद, जनसमूह के एक बड़े भाग की जीवन पद्धति के रूप में आधुनिक घटना है। आधुनिक काल से पहले व्यापार, धर्म तथा युद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण कारक थे जो नगरों की महत्ता तथा स्थिति तय करते थे। ऐसे नगर जो मुख्य व्यापार मार्ग अथवा पत्तन और बंदरगाहों के किनारे बसे थे, प्राकृतिक रूप में लाभ की स्थिति में थे। इसी प्रकार वह नगर जो सामरिक दृष्टि से बेहतरीन रूप में स्थित थे। आखिरी में, धार्मिक स्थल अधिक संख्या में भक्तों को आकर्षित करते थे और इस प्रकार नगर अर्थव्यवस्था को सहारा देते थे। भारत में भी प्राचीन नगरों के उदाहरण देखे जा अन्य सकते हैं, जैसे असम में ब्रह्मपुत्रा नदी के किनारे बसा मध्यकालीन व्यावसायिक नगर तेजपुर अथवा कोशीकोट (पहले कालीकट नाम से जाना जाता था) जो उत्तरी केरल में अरब महासागर पर स्थित है। हमारे पास मंदिर, नगरों तथा धर्मस्थानों के कई उदाहरण हैं जैसे–राजस्थान में अजमेर, उत्तर प्रदेश में वाराणसी (बनारस तथा काशी के नाम से भी जाना जाता है)

तथा तमिलनाडु में मदुरई।

जैसा कि समाजशास्त्रियों ने स्पष्ट किया है, नगरीय जीवन तथा आधुनिकता दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वास्तव में प्रत्येक को दूसरे की अंतर अभिव्यक्ति माना जाता है। हालाँकि, यहाँ बहुत अधिक तथा सघन जनसंख्या निवास करती है तथा चूँकि ये इतिहास में जन राजनीति के स्थल के रूप में जाने जाते हैं, नगर को आधुनिक व्यक्ति का प्रभावक्षेत्र भी माना जाता है। अज्ञानता तथा सुविधाओं का सम्मिश्रण तथा साथ ही एक ऐसी संस्था जिसे बड़ी संख्या में लोग अपना सके, नगर व्यक्ति को संतुष्ट करने के लिए अंतहीन संभावनाएँ प्रदान करता है। गाँव जहाँ व्यक्तिवादिता को हतोत्साहित करता है तथा अधिक दे नहीं सकता, नगर व्यक्ति का पोषण करता है।

यद्यपि अधिकांश कलाकारों, लेखकों तथा मनीषियों ने जब नगर को व्यक्ति का स्वर्ग कहा तो वे गलत नहीं थे, लेकिन यह भी सत्य है कि स्वतंत्राता तथा अवसर केवल कुछ व्यक्तियों को ही प्राप्त है। उपयुक्त तरीके से, केवल सामाजिक तथा आर्थिक विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यक ही विलासी, पूर्णरूपेण उन्मुक्त तथा संतुष्ट जीवन जी सकते हैं। अधिकतर व्यक्ति, जो नगरों में रहते हैं, बाध्यताओं में ही सीमित रहते हैं तथा उन्हें सापेक्षिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है। ये परिचित सामाजिक तथा आर्थिक बाध्यताएँ, विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूहों की सदस्यता द्वारा लगाई जाती हैं जैसा कि आप पूर्व अध्याय में पढ़ चुके हैं। नगर भी, समूह-पहचान के विकास को प्रतिपालित करते हैं– जो विभिन्न कारकों जैसे– प्रजाति, धर्म, नृजातीय, जाति, प्रदेश तथा समूह प्रत्येक कस्बे के शहरी जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में, कम स्थान में अत्यधिक लोगों का जमाव, पहचान को और तीव्र करता है तथा उन्हें अस्तित्व, प्रतिरोध तथा दृढ़ता की रणनीति का अभिन्न अंग बनाता है।

नगरों तथा कस्बों के अधिकांश महत्त्वपूर्ण मुद्दे तथा समस्याओं का संबंध स्थान के प्रश्न से जुड़ा है। जनसंख्या का उच्च घनत्व स्थान के अधिमूल्य पर अत्यधिक जोर देता है तथा रहने के स्थान की बहुत जटिल समस्या उत्पन्न करता है। नगरीय सामाजिक व्यवस्था का प्राथमिक कार्य है कि नगर वफी स्थानिक जीवनक्षमता को आश्वस्त करे। इसका अर्थ है कि संगठन तथा प्रबंधन कुछ चीजों को जैसे– निवास तथा आवासीय पद्धति जन यातायात के साधन उपलब्ध करा सकें ताकि कर्मचारियों की बड़ी संख्या को कार्यस्थल से लाया तथा ले जाया जा सके आवासीय, सरकारी तथा औद्योगिक भूमि उपयोग क्षेत्र के सह-अस्तित्व की व्यवस्था तथा अन्त में जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, फलिस, जन सुरक्षा तथा कस्बे के शासन पर नियंत्रण की आवश्यकता।

इनमें से प्रत्येक कार्य अपने आप में एक बृहत उपक्रम है तथा योजना, क्रियान्विति और रखरखाव को दुर्जय चुनौती देता है। इसे और जटिल बनाते हैं वे कार्य जो समूह, नृजातीयता, धर्म, जाति इत्यादि के विभाजन तथा तनाव से न केवल जुड़े बल्कि सव्रिफय भी होते हैं। उदाहरण के तौर पर कस्बे में आवास का प्रश्न अपने साथ कई अन्य समस्याएँ भी लाता है। गरीबों के लिए आवास की समस्या 'बेघर' तथा 'सड़क पर चलने वाले लोग' इस प्रक्रिया को जन्म देते हैं– जो सड़कों, फुटपाथों, फलों तथा फ्लाईओवर के नीचे, खाली बि ल्डिग तथा अन्य खाली स्थानों पर रहते तथा जीवनयापन करते हैं। यह इन बस्तियों के जन्म का एक महत्त्वपूर्ण कारण भी है। यद्यपि कार्यालयी परिभाषा भिन्न हो सकती है, एक बस्ती में भीड़-भाड़ तथा घिच-पिच वाला रिहायशी इलाका होता है, जहाँ जनसुविधाओं (सफाई, पानी, बिजली इत्यादि) का अभाव तथा घरों के निर्माण में प्लास्टिक वफी चादर तथा कार्डबोर्ड से लेकर बहु-मंजिली ढाँचों में प्रयुक्त काँक्रीट का प्रयोग होता है क्योंकि यहाँ 'स्थायी' संपत्ति का अधिकार दूसरे स्थानों की तरह नहीं होता है। अतः बस्तियाँ 'दादाओं' की जन्म भूमि होती हैं, जो उन लोगों पर अपना बलात् अधिकार दिखाते हैं जो वहाँ रहते हैं। बस्ती क्षेत्र पर अधिकार प्राकृतिक रूप से दूसरे तरीकों के गैर-कानूनी धंधों, अपराधों तथा भूमि संबंधित गैंग के अंग बन जाते हैं। नगरों में मनुष्य कहाँ और केसे रहेंगे– यह प्रश्न सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान पर आधारित होता है। पूरे विश्व में नगरीय आवासीय क्षेत्र प्रायः समूह तथा अधिकतर प्रजाति नृजातीयता, धर्म तथा अन्य कारकों द्वारा विभाजित होते हैं।

इन पहचानों के बीच तनाव के प्रमुख परिणाम पृथकीकरण की प्रक्रिया के रूप में भी उजागर होता हैं। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न धर्मों के बीच सांप्रदायिक तनाव, विशेषकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों में देखा जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप मिश्रित प्रतिवेशी एकल-समुदाय में बदल गए। सांप्रदायिक दंगों को ये एक विशिष्ट देशिक रूप दे देते हैं, जो 'बस्तीकरण' की नवीन प्रक्रिया घैटोआइजेशन को और बढ़ाते हैं। भारत के कई शहरों में ऐसा हुआ है, हाल ही में 2002 के दंगों के दौरान गुजरात में देखा गया। पूरे विश्व में व्याप्त 'गेटेड समुदाय' जैसी वृत्ति भारतीय शहरों में भी देखी जा सकती है। इसका अर्थ है एक समृद्ध प्रतिवेशी (पड़ौसी) का निर्माण जो अपने परिवेश से दीवारों तथा प्रवेशद्वारों से अलग होता है जहाँ प्रवेश तथा निकास नियंत्रित होता है। अधिकांश ऐसे समुदायों

की अपनी समानांतर नागरिक सुविधाएँ जैसे– पानी और बिजली सप्लाई, फलिस तथा सुरक्षा भी होती हैं।

अंततः, आवासीय प्रतिमान नगरीय अर्थव्यवस्था से निर्णायक रूप से जुड़े है। नगरी परिवहन व्यवस्था प्रत्यक्ष तथा गंभीर रूप से आवासीय क्षेत्रों के सापेक्ष औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यस्थलों से प्रभावित हुई है। अगर ये दूर-दराज स्थित होते हैं जैसा कि अक्सर होता है, ऐसी स्थिति में बृहत जन परिवहन प्रणाली के निर्माण तथा उसके रख-रखाव की आवश्यकता है। सफर करना जीवन की एक शैली हो जाती है तथा विच्छेदन का हमेशा के लिए जरिया बन जाता है। परिवहन व्यवस्था का नगर में काम करने वालों की 'जीवन की गुणवत्ता' पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सड़क परिवहन पर भरोसा, सरकार के बजाए निजी साधनों; जैसे-बस की अपेक्षा कारद्ध के प्रयोग से ट्रैफिक के जमाव तथा वाहन प्रदूषण की समस्या पैदा होती है। उपरोक्त चर्चा से यह होगा कि रहने के स्थान के आवंटन जैसा सरल मुद्दा वास्तव में बेहद जटिल तथा नगरीय समाज के बहुआयामी पक्ष को दर्शाता है।

नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन के रूप तथा तत्व को स्थान के केंद्रीय प्रश्न के संदर्भ में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। परिवर्तन का एक प्रत्यक्ष व प्रचलित तत्व किसी विशेष प्रतिवेशी तथा स्थान द्वारा उच्चता तथा निम्नता का अनुभव है। पूरे विश्व में, नगरीय केंद्र अथवा मूल नगर का केंद्रीय क्षेत्र के जीवन में बहुत से परिवर्तन आए। नगर के 'शक्ति केंद्र' 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक बने रहने के पश्चात नगरी केंद्र का पतन 20वी शताब्दी के उतरार्द्ध तक हुआ। यह उपनगर के विकास का समय भी था क्योंकि कई विभिन्न कारणों से संपन्न वर्ग ने नगरों के अंदरूनी भाग से पलायन किया था। आज पश्चिम के अधिकांश देशों में नगरीय केंद्रों का फनरुत्थान हो रहा है तथा यह सामुदायिक जीवन को फनः प्रारंभ करने की कोशिश के रूप में देखा जा रहा है। इससे संबंधित घटना 'भद्रीकरण' से है, जो प्रतिवेश के पूर्ववत निम्न वर्ग का मध्यम अथवा उच्च वर्ग के परिवर्तित स्वरूप को इंगित करता है। जैसे-जैसे भूमि की कीमतों में वृद्धि हुई यह उद्यमियों के लिए अधिक लाभदायक साबित हुआ, तथा उन्होंने इस परिवर्तन को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। किसी बिंदु पर प्रचार संतुष्टि देने वाला होता है क्योंकि जैसे किराए की दर बढ़ती है तथा उपबस्ती ने एक न्यूनतम निर्णायक व्यापार तथा निवासी का रूप अपना लिया। परंतु कभी-कभी यह कोशिश बेकार भी जाती है जिससे प्रतिवेश का स्तर गिर जाता है तथा वह अपनी फरानी स्थिति में पहुँच जाता है।

जन-परिवहन के साधनों में परिवर्तन नगरों में सामाजिक परिवर्तन ला सकते हैं। समर्थ, कार्यकुशल तथा सुरक्षित जन-परिवहन शहरी जीवन में भारी परिवर्तन लाते हैं तथा नगर की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने के साथ ही साथ उसके सामाजिक रूप को भी आकार प्रदान करते हैं। कई विद्वानों ने जन-परिवहन पर आधारित नगर जैसे लंदन अथवा न्यूयार्क तथा वे नगर जो निजी परिवहन पर मुख्यतः निर्भर करते हैं, जैसे लॉस एंजेल्स, के अंतर पर काफी वुफछ लिखा है। यह देखा जाना बाकी है, उदाहरण के लिए दिल्ली की नयी मेट्रो रेल इस शहर के सामाजिक जीवन में कितना परिवर्तन ला रही है। परंतु मुख्य मुद्दा, जो नगरों के सामाजिक परिवर्तन से संबंधित है वह है तीव्र गति से नगरीकरण की ओर अग्रसित भारत जैसे देश, यहाँ जो ध्यान देने की बात होगी वह यह कि नगर जनसंख्या में लगातार वृद्धि के आगे किस तरह से टिक सकेंगे, विशेष तौर पर जब प्रवासियों द्वारा यहाँ की जनसंख्या की प्रावृफतिक वृद्धि सघन हो रही है।

संदर्भ-सूची

1. गिडेंस, एंटनी. 2002. सोशयोलॉजी (चैथा संस्करण)
2. गर्थ, हैंस तथा सी.राईट मिल्स (संपा.) फ्रॉम मैक्स वेबर।
3. खिलनानी, सुनील. 2002. द आइडिया ऑफ इंडिया, पेंगविन बुक्स, नयी दिल्ली।
4. पटेल, सुजाता तथा कुशलदेव (संपा.) 2006. अर्बन सोशयोलॉजी (ऑक्सफोर्ड इन इंडिया रीडिंग्स इन सोशयोलॉजी एंड एंथ्रोपॉलोजी सीरीश) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।
5. श्रीनिवास एम.एन. सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया।